छत्तीसगढ़ की प्रदर्शनकारी लोक-कलाएँ

राजन यादव

मनुष्य ने अपनी विकास यात्रा में अनेक उत्थान-पतन देखे। बहुत कुछ पीछे छूटा, बहुत कुछ नया सीखा। संस्कारों, परंपराओं, आस्था, अनुभवों, जीवन मूल्यों, भाषा, कला, साहित्य, विज्ञान इत्यादि क्षेत्रों पर इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। किंतु कुछ ऐसा था, जिसने इस समृद्ध विरासत को सहेजा, सँवारा तथा उसके अस्तित्व को बनाये रखा, जिसकी मनोहारी छटा आज भी अनेक रंगों में जीवन के सत्य से साक्षात्कार कराती है, जो सहज है, सरल है और उतना ही प्राचीन है, जितनी मानव संस्कृति, वह है लोक-ज्ञान, प्रदर्शनकारी लोक-कलाएँ जो मौखिक परंपरा द्वारा लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोक चित्रकारी तथा लोक शिल्प के रूप में पथ प्रदर्शन करता है।

किसी भी देश अथवा प्रान्त के वाङ्मय में प्रदर्शनकारी लोक-कलाओं का विशेष महत्व होता है, क्योंकि उसमें लोकमानस का सजीव चित्र दिखायी पड़ता है। उस चित्र में लोक हृदय की धड़कन होती है, माटी की महक का अनुभव होता है, लोक के जीवन की अनुभूति और अनुभव का संगीत सुनायी देता है, संस्कारों की गूँज होती है। नवम्बर सन् 2000 ई. से अस्तित्व में आया भारत गणराज्य का 26वाँ राज्य छत्तीसगढ़ कृषि प्रधान, जनजातीय प्रधान राज्य है। यहाँ के जनजीवन के निर्माण में प्रदर्शनकारी लोककलाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। ईश्वर आराधना से लेकर पितरों तक की वंदना छत्तीसगढ़ की प्रदर्शनकारी कलाओं में श्रद्धाभाव से की गयी है।

छत्तीसगढ़ की प्रदर्शनकारी लोककलाओं में बहुत बड़ा हिस्सा लोकगीतों का है। इसकी परंपरा मनुष्य के आदिम युग से चली आ रही है। समाज के प्रांगण में प्रफुल्लित विकसित संपूर्ण मानवीय भावनाएँ, विश्वास और मान्यताएँ, परंपराएँ और रीतियाँ, लोकगीत की प्रेरक परिस्थितियाँ हैं। लोक ऋषि देवेंद्र सत्यार्थी के शब्दों में "जिस प्रकार फल की उत्पत्ति से पहले फूल अपनी बहार दिखाता है, उसी प्रकार बड़े-बड़े प्रतिभाशाली साहित्य सेवियों तथा कलाकारों के आने से पहले ग्रामीण भाट और कथक्कड़ गीत गाकर ग्राम साहित्य की नींव डालते हैं। सुख-दुःख की कितनी ही समस्याएँ भोले-भाले ग्रामवासियों को अपने साथ हँसा या रूलाकर साहित्य निर्माण के लिए सामग्री प्रदान करती हैं।"1

छत्तीसगढ़ी लोकगीत

छत्तीसगढ़ ने अपने विशाल वृक्ष पर अनेक संस्कृतियों का पोषण कर उन्हें सुरक्षित रखा है। भौगोलिक संरचना ने यहाँ के सामाजिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है। बहुदेव पूजा की भूमि छत्तीसगढ़ की विभिन्न जातियों का सबसे बड़ा भंडार उनके लोकगीत हैं। डॉ. दयाशंकर शुक्ल ने छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

नारी गीत–संस्कार विषयक (जन्म-गीत एवं विवाह-गीत)

नृत्यगीत–सुआ

पर्वगीत–भोजली और गौरी

अन्य गीत–ददरिया और लोरी।

पुरुष गीत–

नृत्यगीत–डंडा, करमा, मंडई, फड़ी नाचा और रास धार्मिक गीत-जँवारा और भजन, जातीय गीत (बाँस और देवार), ऋतुगीत (बारहमासा और वर्षागीत)

बालक गीत–बड़ों के खेल के गीत, शिशुओं के खेल के गीत, बालिकाओं के गीत।

प्रबंध गीत–नारी विषयक-अहिमन रानी, रेवारानी, केवला रानी, फुलबासन, फुलकुँवर, पंडवानी, देवी की गाथा

पुरुष विषयक–वीर सिंह, कल्याण सिंह, लोरिकी, सीताराम नायक, भैरोलाल, रसालू तथा सरवन गाथा।"2
बिहाव गीत-नारी विषयक संस्कार गीत पहले की अपेक्षा अब कम गाये जाते हैं। फिर भी विवाह गीत की प्रासंगिकता बनी हुई है। कला संस्थानों द्वारा विवाह गीतों की प्रस्तुतियाँ भी होती हैं। विवाह संस्कार के प्रत्येक चरण में जैसे–बात पक्की होना, चुलमाटी, तेल हरदी, मड़वा सजना, बरात निकासी, परघनी, भड़ौनी, भाँवर, गठबंधन तथा बिदाई के अवसर पर गाये जाने वाले गीत हमारे हृदय को अभिभूत कर देते हैं। मंचों पर भी इसकी मोहक प्रस्तुतियाँ होती हैं। मड़वा सजना के गीत गाँव के आँगन से लेकर भव्य मंचों पर प्रस्तुत होते हैं, जहाँ वर-वधू का जुड़ाव राम-सीता, विष्णु-लक्ष्मी, शिव-पार्वती अथवा राधा-कृष्ण के साथ होता है। भले ही किसी ग्राम में विवाह धनिया-झुनिया या समारू-तिहारू का हो, कोकिल कंठी नारियाँ ये गीत गाती हैं–

“सरई सौगोना के दाई मड़वा छवाई ले

वही सिरिस, वही खाम।

सीता ल बिहावय राजा राम।

नदिया के तिर-तिर दाई पड़की परेवना

कनकी न चुनी-चुनी खाय

कि अये मोर दाई सीता ला बिहावय राजा राम।”

सुआ–नृत्य गीतों में सुआ नृत्य-गीत प्रमुख है, जो सुग्गे को संबोधित करके गाया जाता है। इसे छत्तीसगढ़ का 'गरबा' भी कहा जाता है। यह संदेश परक नारी वेदना का नृत्य गीत है। सावन आने से छत्तीसगढ़ के ग्रामीण महिलाओं के कंठ-स्वर से भोजली गीत की ध्वनि फूट पड़ती है। भोजली को ही गंगा-देवी व साक्षात् अन्नपूर्णा मानकर माता स्वरूप इनकी पूजा की जाती है। इसके अंकुरण से लेकर विसर्जन तक जो

गीत गाये जाते हैं, उन्हें भोजली गीत कहा जाता है। छत्तीसगढ़ में प्रतिवर्ष श्रावण शुक्ल नवमी से लेकर भादो अंधियारी तक भोजली पर्व मनाये जाने की परंपरा है, किंतु मंचों पर भोजली गीतों की सदाबहार प्रस्तुतियाँ होती हैं।

गौरागीत–छत्तीसगढ़ में दीवाली की रात में आयोजित गौरा उत्सव यहाँ रहने वाले आदिवासी समाज का बड़ा पर्व है। ये उनके आराध्य बड़ादेव (महादेव) और गौरी के विवाह से संबंधित है। 'फूल खोंचना' से लेकर विसर्जन तक इस पर्व में गीत गाये जाते हैं। लोक अनुष्ठान के रूप में इसका आयोजन वर्ष में एक बार होता, किंतु महोत्सव और साँस्कृतिक मंचों पर बाँकी-झाँकी के साथ गौरा गीतों की प्रस्तुतियाँ होती हैं।

ददरिया–ददरिया छत्तीसगढ़ का प्रेम गीत है। श्रमगीत के रूप में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है। निंदाई-गोड़ाई करते मजदूर, हलवाहे तथा फसलों की मिसाई करते किसानों के मुख से मैंने अनेक बार इस मंजुल गीत को सुना है। अब मंचों पर ददरिया वाद्य यंत्रों के संगत में गायी जाने लगी है। संगीतात्मकता और भाव प्रवणता इस गीत के प्राण हैं। जैसे–

"चिकनी रे पथना, ऍड़ी के घसना।

मड़के के दोसदारी, देवथे सपना।।

महीं ल लेएवँ, अमटाही कहिके।

तोर धोतिया ल तीरेंवँ, गोठियाही कहिके।।

फेंटा रे बाँधे पुरूत करके।

राम झीरिया नहाये, सुरूत करके।।"

छत्तीसगढ़ की प्रदर्शनकारी कला के अंतर्गत ददरिया बहु-प्रचलित लोकगीत है। छत्तीसगढ़ की कोई भी ऐसी लोककला की संस्था नहीं है, जो अपने एक या दो घण्टे के कार्यक्रम में ददरिया की प्रस्तुति न देते हों।

डंडा–छत्तीसगढ़ी पुरुष नृत्य-गीतों में डंडा, पंथी, करमा, मंडई तथा फड़ी प्रमुख हैं। ये नृत्य उत्साहवर्धक समारोहों और पर्वों में होते हैं। डंडा, पंथी तथा बाँस आदि शरतकाल के उत्सव गीत हैं। रास, फड़ी, नाचा आदि नृत्य बसंत और ग्रीष्म ॠतुओं के संधि काल में प्रचलित रहते हैं। छत्तीसगढ़ कला संस्कृति तथा आर्थिक दृष्टि से भारत का महत्वपूर्ण राज्य है। यहाँ सिद्धों, शाक्तों, संत धर्मदास तथा गुरुघासीदास की वाणी अनुगुंजित है। वल्लभाचार्य की सगुणी भावना के साथ निर्गुणियों का संदेश जन-मानस में व्याप्त है। करमा, पंथी डंडा और रावत नाचा के गीतों और दोहों में लोक प्रतिध्वनित होता है। गेड़ी नृत्य तथा आदिवासी क्षेत्रों में सरहुल, झूमर, डोमकच आदि नृत्य प्रधान लोक विधा है।

डंडा गीत छत्तीसगढ़ का रास-नृत्य गीत है। इस नृत्य गीत में कृष्णचरित, रामकथा, देवी वंदना तथा सामाजिक विषयों पर आधारित गीत गाये जाते हैं। प्रस्तुति के आधार पर इसकी विभिन्न शैलियाँ हैं, जो रहस गोन्दर की फुलगुथनी, तीन डंडिया, पीठा जोरी तथा रेखी के नाम से जानी जाती है। लोककला मंचों

द्वारा डंडा गीत नृत्य की साजो-बाज के साथ आकर्षक प्रस्तुतियाँ होती हैं। बानगी के तौर पर रामकथा का एक प्रसंग इस डंडा नृत्य-गीत में प्रस्तुत है–

"तरि हरि ना ना मोर ना ना रे भइया

ए हरि ना ना मोर ना ना रे भाई ....

जोगी के भेख ला धरे निसाचर,

भिक्छा माँगन चले आये हो लाल

भिक्छा ला लेके मोर निकले हे जानकी

रथ मा लिए बइठाय हो लाल।

रावन के हाथे म परे हे सीता

सरन-सरन गोहरावै हो लाल

है कोनो हितु परीतू रे भइया त

रथ ले लेवो छोडाय हो लाल

आतेक ल सुनके मोर बुढ्वा जटाई

आधा सरग मेंड़राए हो लाल।"

करमा–करमा छत्तीसगढ़ का प्रमुख लोक-नृत्य है। यह घसिया जाति का विशेष जातीय गीत है। इसे प्रायः सभी जातियों द्वारा गाया जाता है। आदिवासी, करमा नृत्य करके प्रकृति को पूजते हैं और मंगलगान करते हैं। आदिवासी करमा, बैगानी करमा तथा देवार करमा गायन की शैली के आधार पर इसके प्रकार हैं। ददरिया की भाँति करमा भी लोककला मंचों द्वारा खूब प्रदर्शित होने वाली लोकविधा है। पुरुषों के लोक नृत्य गीतों में मड़ई का महत्वपूर्ण स्थान है। यह गौ-पूजन का त्यौहार है। 'मातर' मातृशक्ति से जागृत करने के लिए मनाया जाता है।

मड़ई–मातर तथा रावत नाच का आविर्भाव श्रीकृष्ण के गोवर्धन धारण, इन्द्र के मान-मर्दन के उपरांत, गोप-ग्वालों के आनंद उत्सव से माना जाता है। अँखरा, देवता। काछन, सुहई, सुखधना, राउत नाचा, आशीष वचन, मड़ई तथा बाजार परिभ्रमण के रूप में यह आकर्षक नृत्य संपूर्णता को प्राप्त करता है। इन विविध सोपानों पर गाये जाने वाले दोहे में गंभीर कथा, जन-जीवन, अपने व्यवसाय संबंधित विभिन्न वस्तुओं, गौरव, शौर्य, विविध धार्मिक कथानकों तथा सामाजिक असमानता का चित्रण होता है। जैसे–

"गउ माता के महिमा भैया, नी कर सकी बखान रे।

नाच-कूद के जेला चराइन, किसन चन्द भगवान रे।।

केकती बड़े के कैंवरा, गुंगुर बड़े के धूप रे।

तोला पूछवँ पंडित बाबू, चाल बड़े के रूप रे।।

नारी निंदा झन कर दाऊ-नारी नर के खान रे।

नारी नर उपजावै भैया, धुरू पहलाद समान रे।।"

राउत नाचा अब पर्व विशेष तक सीमित नहीं है। राजनैतिक-सामाजिक सभाओं से लेकर लोक महोत्सवों में प्रदर्शनकारी कला का बाना पहन लिया है।

पंथी–छत्तीसगढ़ की नृत्य परंपरा में पंथी को अन्तरराष्ट्रीय ख्याति मिली है। इस नृत्य गीत की प्रस्तुति सतनाम पंथियों द्वारा की जाती है। इसकी वास्तविक शुरुआत गुरु घासीदास के ज्येष्ठ पुत्र व प्रथम शिष्य गुरु अमरदास से माना जाता है। पंथी गीत मुख्यतः गुरुघासीदास के जीवन चरित्र, उनके द्वारा किये गए चमत्कारों का बखान व यशगान पर केन्द्रित होता है। 18 दिसम्बर को जैतखम्भ पर इनका झण्डा चढ़ाने से लेकर रात्रिकालीन कार्यक्रमों में पंथी नृत्य किया जाता है। इसके 12-13 नर्तक होते हैं और गायक-वादक सहित सभी नृत्य करते हैं। सुमरनी-से इस नृत्य की शुरूआत होती है जैसे–

"सना न नना न न ना हो ललना

पहिली सुमरनी मैं कउन देव ला सुमरौवँ

पहिली सुमरनी ओ गुरु घासीदास के

दूजे सुमरनी मैं कउन देव ला सुमरौव

दूजे सुमरनी ओ आदि ओ पुरुष के

कन-कन मा वास जौन हावय हो ललना।"

विगत कई वर्षों से पंथी नृत्य भी पर्व विशेष के अलावा मंचों पर राजनैतिक जलसों, धरना प्रदर्शनों में प्रस्तुत होने लगे हैं। भले ही यह पुरुष प्रधान नृत्य है, किंतु अब महिलाओं के द्वारा भी पंथी नृत्य की प्रस्तुतियाँ होने लगी हैं।

नाचा-नाचा गीत–यह नृत्य और लोकनाट्य है। इसमें गुरु वंदना परक गीतों की भी द्रुत लय में प्रस्तुति होती है, क्योंकि सभी विधाएँ गुरु के मुख से प्राप्त की जा सकती हैं। परब्रह्म विद्या के प्रवेश द्वार में तो अनुभवी गुरु के मार्गदर्शन से ही प्रवेश हो सकता है। नाचा के कलाकार इस गीत को नृत्य के साथ प्रस्तुत करते हैं–

"गुरु के बाना बाँध लियो बाना जी।

पहली सलामी जी चंदा सुरूज ला,

जग में करे उजियारा जी।।

दूजे सलामी जी माता-पिता ला,

पाल पोंस के बड़ा किया ये तन ला।

तीजे सलामी जी सब संतन ला,

भूल-चूक सब माफी करो ये तन ला।।"

फाग–बसंत पंचमी से लेकर होलिका दहन तक गाये जाने वाले छत्तीसगढ़ी फाग गीतों के कथानक विस्तृत होते हैं। इनके अन्तर्गत रामकथा, कृष्णकथा, महाभारत, देवी भागवत, लोक देव-देवियाँ, आल्ह खण्ड व लोकगाथाओं के प्रसंग गाये जाते हैं। कबीर, तुलसी, रहीम, ऐतिहासिक पुरुष व घटनाएँ, सामाजिक विषय, क्षेत्र विशेष के देवगण तथा लौकिक प्रेम इत्यादि फाग गीतों के हैं। शास्त्र की भाँति लोक में भी प्रथम पूजित गणेश जी का पावन स्मरण किया जाता है। वंदना परक इन फाग गीतों में जँवारा गीत की भाँति एक ही गीत में अनेक देवी-देवताओं के प्रसंग आते हैं जैसे–

"गनपती को मनाँव प्रथम चरन गनपती को।।

काकर पुत गनपती भये काकर हनुमान

काकर पुत भैरव-भये, काकर पुत सीरी राम।

गौरी के पुत गनपती भये, अंजनी के हनुमान

काली के पुत भैरव भये, कौसल्या के राम।।

काहे करन गनपती भये, काहे करन हनुमान

काहे करन भैरव भये, काहे करन सीरी राम

पूजा करन गनपती-भये लंका दहन हनुमान

असुर बरन भैरव भये, रावन मारे सीरी राम।।"

अनेक पर्वों-उत्सवों के साथ आस्था और विश्वास जुड़े हैं। इन पर्वों में कुछ-न-कुछ अनुशासन की बातें की जाती हैं–दशहरा हो या दीपावली, दुर्गापूजा हो या गणेशोत्सव, पोलापर्व हो या हरितालिका, देवउठनी एकादशी हो या अक्षय तृतीया, जँवारा हो या भोजली, लगभग सभी पर्व-उत्सव धार्मिक विश्वास के प्रतीक हैं, लेकिन होली में किसी देवता से वरदान नहीं माँगा जाता। इस त्यौहार का तो मुख्य लक्ष्य आमोद-प्रमोद और भरपूर मनोरंजन होता है। "होली में प्रेम और श्रृंगार की वह अजस्र सरिता उमड़ती है, जिसमें हुलियारों के बाह्य और अन्तस रसाप्लावित हो उठते हैं। अबीर की लालिमा से सारा वातावरण रंगीन हो उठता है तथा संगीत की अविरल सुहावनी तान सुनकर मन-मयूर थिरक उठता है।"3 फाग गीत साधारण रूप श्रृंगार,

वासना और उल्लास का प्रतीक समझा जाता रहा है, किंतु फागकार की वृत्ति समय-समय पर जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष की ओर भी उन्मुख होती रही है।

जँवारा–छत्तीसगढ़ में उपासना की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं, उन्हीं में से एक लोक अनुष्ठान जँवारा है, जो शारदीय और वासंती नवरात्र के रूप में मनाया जाता है। बिरही भिगाने से लेकर विसर्जन तक देवी आराधना संबंधी जो भी गीत गाये जाते हैं, उसे जँवारा गीत कहते हैं। इसके अन्तर्गत, वंदना, श्रृंगार, बारहमासा, पौराणिक कथा तथा विनय परक गीतों में महामाई, भवानी, शीतला, जगतारण काली आदि नामों से आदिशक्ति जगदम्बा का महिमा गान किया जाता है। निम्नलिखित जँवारा गीत में देवी की अद्वितीय श्रृंगार व शोभा चित्रित है–

"तो दुलरू लेवन बर हाँ मोर चलै महामाई। टेक।

तो दुलरु लेवन चले महामाया रुचि-रुचि कर सिंगारा

रुचि-रुचि कर सिंगार साज सब फूलन साजे गहना

खोखमा फूल के चुरा बिराजे कमल फूल पैरी अति राजे

दोनो मरुवना अनवट बिछिया सेंदुर नेऊर छाजे

केंवरा कमर पर अति सुंदर झकमक-झकमक हाँ, मैं देखेवँ माता।।"

जसगीत, जँवारा गीत, जगराता, माता सेवा गीत आदि रूपों में जसगीत नृत्य के साथ सांस्कृतिक मंचों की शोभा बढ़ा रहा है। यह अब धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है।

बाँसगीत–बाँस रावतों का जातीय गीत है। गायन और वादन प्रिय इस जाति की अपनी विशिष्टता है। लौकिक तथा पौराणिक प्रसंग, सामाजिक तथा प्रकृति विषयक बाँसगीत गाये जाते हैं। गीत का आरंभ देवी-देवताओं की वंदना से करते हैं, जिसे 'घोर' कहा जाता है। जैसे–

"सारद सारद मैं तो रटेंव भवानी, सारद बसे बड़े दूर हो

सारद पौढ़े हिंगलाज मचोलना में लागेंव चरन के धूर हो

जय महामाया मोहबा के, अँखरा के गुरु बैताल हो

चौसठ जोगनी पुरखा के, अलकर मा होइ सहाय हो।"

इसकी प्रस्तुति मंचों पर भी होती है, किंतु झलक के रूप में लोकगीतों की झाँकी के रूप में यदा-कदा बाँस गीत सुनने को मिलता है। यह गीत प्रचलन में तो है, किंतु इसके गायन में कमी आ गई है। बाँस गीत में वाचिक परंपरा की गाथाओं को गाने वाले गायक दुर्लभ होते जा रहे हैं।

देवार गीत–देवार छत्तीसगढ़ की एक घुमंतू जाति है। ये निर्धन हैं, किंतु ईश्वर ने इन्हें प्रदर्शनकारी कलारूपी धन देकर समृद्ध किया है। नृत्य गीत भी इस जाति की जीविका का साधन है। अब इनके रहन-सहन में परिवर्तन हो रहा है। ये समाज की मुख्यधारा में आ रहे हैं। ये जो सरस गीत नृत्य प्रस्तुत करते हैं, उनमें घुच्ची, झूमर, करमा, छटका आदि प्रमुख हैं। अपने टूटे-फूटे शब्दों में ही इनकी कविता में कवित्व की झलक दीख पड़ती है। एक गीत प्रस्तुत है–

"झुमर जारे पँड़की झुमर जा रे

धमधा के राजा भाई तोर कइसन लाग रे

लहर लोर लोर, तीतुर में झोर झोर

राय झुमझुम बाँस पान, हंसा करेला पान-झुमर जा रे

धमधा के राजा भाई मोर ससुर लाग रे

लहर लोर लोर, तीतुर में झोर झोर

राय झुमझुम बाँस पान, हंसा करेला पान

झुमर जा रे पँड़की झुमर, जा रे।"4

भाजन–छत्तीसगढ़ माता कौशल्या की जन्मभूमि है। यह तांत्रिकों का गढ़ रहा जहाँ साधना संबंधी अनेक प्रयोग हुए। यहाँ कई संप्रदाय व पंथों का प्रभाव रहा, जिन्हें हम यहाँ के लोक भजनों में सुनते हैं। मौखिक भजनी साहित्य की यहाँ बहुलता है। एक निर्गुणी या कायाखण्डी भजन प्रस्तुत है–

"दिन चारि मैंहरवा में खेली लेतेंव हो दिन चारी

चार गजे चरगजी चढ़ाये, चढ़े काठ के घोड़ा जी

चार संत तोला बोहि के लेगे, टोरे कमर के डोरा रे

हाड़ जरे तोर बन कस लकड़ी, केस जरे बन घासा

उठ हाथ के काया जरगे, माटी म मिलही रास रे

ना काम अही भाई भतीजा, ना पूरवत के पूता जी

आही बुलावा परमेसर के, खींचत लेगही दूता रे।"

मानस तथा लोककला मंचों व मरघट में इस प्रकार के लोकभजनों का गान होता है।

बालगीत खुडुवा और फुगड़ी अब खेलों के दौरान नहीं गाये जाते, बल्कि इनकी प्रस्तुतियाँ मंचों पर होने लगी है। इन गीतों में गायन ही नहीं, अपितु नृत्य और वादन का भी जुड़ाव हो गया है।

छत्तीसगढ़ी लोकगाथा

छत्तीसगढ़ की प्रदर्शनकारी लोककलाओं में लोकगाथाओं का बहुत बड़ा योगदान है। ये चिरकाल से ही मौखिक परंपरा के रूप में लोक में प्रचलित हैं। इन लोकगाथाओं को सदा से ही विगत पीढ़ी आगत पीढ़ी को एक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सौंपती चली आ रही है। इन लोकगाथाओं का कोई प्रामाणिक पाठ नहीं होता। " संवर्धनशील काव्य की भाँति इस लोक-गाथा में समय-समय पर गवैयों की सुविधा के अनुसार परिवर्तन तथा परिवर्धन होता रहता है। अतः इसका मूल रूप नष्ट हो जाता है और इसके कलेवर में वृद्धि होती रहती है।"5

लोकगीत का एक प्रकार या भेद लोकगाथा है, इसलिए इन्हें कथागीत, कथात्मक-गीत, कहानी गीत आदि संबोधन भी प्राप्त हैं। छत्तीसगढ़ में अभी भी 'चंदैनी ' लोकगाथा को चंदैनी गीत कहा जाता है। इसी प्रकार बाँसगीत के नाम से अनेक लोकगाथाएँ गायी जाती हैं। बस्तर में केहनी गीत अर्थात् कहानी गीत संबोधन लोकगाथाओं के लिए प्रयुक्त होता है। छत्तीसगढ़ी साहित्य का इतिहास लोकगाथाओं से प्रारम्भ होता है। "छत्तीसगढ़ी जनपद के प्रायः समस्त प्रधान लोकगीतों में किसी न किसी रूप में लोक-गाथा का समावेश रहता है। इसके अंतर्गत नारी गीतों में सुआ, भोजली तथा देवी गीतों में और पुरुष गीतों में डंडा, पंडवानी, आल्हा में भी लंबी कथाएँ वर्णित रहती हैं। अल्प कथाओं में ढोला, चन्दा, वीरसिंह तथा सरवन की कथा प्रमुख है।"6 छत्तीसगढ़ में प्रचलित प्रमुख लोकगाथाओं में पंडवानी, चंदैनी (लोरिक-चंदा) भरथरी ढोला मारू तथा दशमत ओड़ानिन की अधिक प्रस्तुतियाँ होती हैं।

पंडवानी–पंडवानी स्वांग और संगीत का ऐसा मनोरम संगम है, जहाँ महाभारत की अमर शौर्य गाथा हिलोरे लेती हैं। छत्तीसगढ़ी में इस लोकगाथा के दो रूप प्रचलित हैं–कापालिक तथा वेदमति। कपालिक पण्डवानी में कपोल कल्पित घटनाएँ अत्यंत मनोरंजन ढंग से प्रस्तुत की जाती हैं, जबकि वेदमति शैली में वेद समस्त घटनाओं तथा पात्रों को ही पंडवानी के कथानक का आधार मानते हैं। कापालिक शैली में गायन और नृत्य दोनों होता है। इस शैली की शीर्षस्थ गायिका पद्मविभूषण तीजनबाई हैं। वेदमति का अर्थ वे काव्य अथवा गाथाएँ हैं, जो लिपिबद्ध होकर ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हैं। लिखित शब्द को ही स्थानीय बोली में वेद के रूप में संबोधित किया जाता है। इस शैली के प्रमुख पंडवानी गायक-झाड़ूराम देवांगन, रेवाराम साहू, पुनाराम निषाद एवं रितु वर्मा हैं। शांति बाई और उषा बाई आदि कापालिक शैली में गायन करती हैं।

पंडवानी के मूल नायक भीम हैं, जिसके चरित्र को उभारने के प्रयास में अन्य पात्रों–कुन्ती, द्रौपती, शेष पाण्डुपुत्रों और कौरवों का उल्लेख होता चला जाता है। ये कलाकार सबल सिंह चौहान रचित महाभारत की कथाओं को आधार मानकर पंडवानी गायन करते हैं। छत्तीसगढ़ की प्रदर्शनकारी लोककलाओं में रावत नाच, पंथी के पूर्व पंडवानी अन्तरराष्ट्रीय पहचान बना चुकी है।

चंदैनी लोकगाथा–पंडवानी के पश्चात् लोकप्रियता की दृष्टि से चंदैनी ही अधिक लोकप्रिय लोकगाथा है, जिसे छत्तीसगढ़ में चंदैनी के अतिरिक्त चंदा, लोरिक, लोरिक चंदा, उढ़रिया तथा चंदा रउताइन इत्यादि नाम

से पुकारा जाता है। यह लोकगाथा लोरिक और चंदा के प्रेम वृत्तांत को लेकर चलने वाली प्रेमगाथा है, जिसमें रावत जाति के जीवन का गौरवपूर्ण चित्रण होता है।

छत्तीसगढ़ में चंदैनी लोकगाथा का संबंध रायपुर जिले के ग्राम रीवा (लखौली) से है। इसके छत्तीसगढ़ी रूप की कथा वेरियर एल्विन ने लिखी है। इस कथा के अनुसार चंदा बावन वीर की पत्नी थी। शिव अभिशाप के कारण बावन वीर होते हुए भी नपुंसक हो जाता है। चंदैनी उसे छोड़कर अपने मायके जाने लगती है। रास्ते में बँटवा उसका मार्ग रोककर जबरदस्ती उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता है। लोरिक उसकी रक्षा करता है। लोरिक की वीरता से प्रभावित होकर चंदा उससे प्रेम करने लगती है। लोरिक, चंदा को लेकर हरदी भाग जाता है। रास्ते में बावनवीर लोरिक को युद्ध के लिए ललकारता है। बावनवीर को पराजित करके लोरिक, चंदा को लेकर आगे बढ़ता है, पराजित बावनवीर चिढ़कर कोलों को भड़काता है और लोरिक पर आक्रमण करा देता है, किंतु लोरिक की यहाँ भी विजय होती है। फिर लोरिक हरदी पहुँचता है, जहाँ का सहुआ राजा उसकी वीरता से प्रसन्न होकर अपना आधा राज्य उसे दे देता है। वहाँ लोरिक और चंदा सुखपूर्वक जीवनयापन करने लगते हैं। उन दोनों से 'चनरइसा' नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होता है। इस प्रकार चंदैनी प्रेम गाथा की सुखपूर्वक समाप्ति होती है।

इस विधा को चिन्तादास गायन शैली में प्रस्तुत करते हैं तो रामाधार साहू जी लोकनाट्य के रूप में। बहुत-सी कला मण्डलियाँ चंदैनी लोकगाथा को मंचों पर प्रदर्शित करती हैं।

भरथरी लोकगाथा—भरथरी मूल रूप में मालवा की एक लोकप्रिय लोकगाथा है, जो छत्तीसगढ़ में आज भी जीवित है। भरथरी, भृर्तहरी का लोक रूप है, जो राजा विक्रमादित्य के कनिष्ठ भ्राता थे। मालवा की यह लोकगाथा छत्तीसगढ़ में कैसे प्रचलित हुई? इस संबंध में प्रमाणित रूप से कुछ कहना संभव नहीं है, किंतु यह सत्य है कि लोकगाथाएँ यात्रा करती हैं। मालवा के कनफटे जोगियों तथा सिंगीनाथों का आगमन इस अंचल में होता रहा है। संभवतः इनके भरथरी गायन से प्रभावित होकर यहाँ के लोकगायकों ने इस गाथा को अपनी लोक शैली में ढाल लिया हो, जो कालान्तर में समस्त छत्तीसगढ़ में प्रचलित हो गयी।

छत्तीसगढ़ में प्रचलित भरथरी की गाथा में राजा भरथरी के जन्म से लेकर योगी हो जाने की कथा है। भरथरी उज्जैन के राजा इन्द्रसेन और रानी रूपदेई का पुत्र था। नामकरण के समय काशी का पंडित भरथरी के योगी बनने की भविष्यवाणी करता है। रूपदेई भरथरी को योगी बनने से रोकने के लिए उनका विवाह समदेई से कर देती हैं। विवाह के उपरान्त प्रथम रात्रि में ही सोने की सेज टूटने पर समदेई हँसने लगती है। भरथरी विरक्त होकर गुरु गोरखनाथ की शरण में पहुँचकर बारह वर्षो तक योग साधना करता है। इस प्रकार की कथा इस गाथा में वर्णित है। देखा जाए जो सिद्धार्थ गौतम बुद्ध की कथा से भरथरी लोकगाथा की समानता है।

छत्तीसगढ़ में भरथरी गायन की विविध शैलियाँ प्रचलित हैं। यहाँ कथावस्तु की दृष्टि से भरथरी के दो प्रकार प्रचलित हैं—प्रथम भरथरी तथा द्वितीय भरथरी चरित्र। भरथरी चरित्र में यहाँ के लोकगायक राजा भृर्तहरि के संपूर्ण जीवन चरित का गायन करते हैं, जबकि भरथरी लोकगाथा के अन्तर्गत केवल भृर्तहरि की

वैराग्य कथा को गाते हैं। श्रीमती सूरुजबाई खाण्डे, श्री महादेव तथा श्री चिन्तादास सतनामी भरथरी के वरिष्ठ गायक हैं। भरथरी गायिका श्रीमती रेखा निषाद अपनी कथा गायन में नृत्य, अभिनय व टीका भी करती हैं।

ढोला मारू की गाथा-ढोला मारू मूलतः राजस्थान की ऐतिहासिक प्रेम गाथा है, जिसे वहाँ 'ढोला मारू रा दूहा' कहा जाता है। इस गाथा का नायक ढोला, नायिका मारू और खलनायिका रेवा नामक एक जादूगरनी है। इस कथा में भी अन्य मध्ययुगीन लोकगाथाओं के समान कई टोना, तंत्र-मंत्र तथा अनेक स्थानीय अंधविश्वासों का उल्लेख है। इसकी मौखिक परंपरा में दोहे ही कंठस्थ रखे जाते हैं, शेष आख्यान बीच-बीच में गायक अपनी रूचि के अनुरूप जोड़ता-घटाता रहता है। 15वीं शताब्दी कुशल लाभ ने ढोला-मारू के आख्यान को लिखने में चौपाई का प्रयोग करके इस कथा को व्यवस्थित किया। वर्तमान में ढोला-मारू राजस्थान में नाट्य रूप में प्रचलित में है।

छत्तीसगढ़ में यह लोक-गाथा तथा लोकनाट्य दोनों ही रूपों में लोक परिवेश में ढलकर यहाँ की लोक गायन परंपरा से जुड़ गयी है। यहाँ ढोला-मारू के कथानक के अन्तर्गत 'मारू का गौना' प्रसंग अधिक प्रचलित है। इसकी शुरुआत इन पंक्तियों के गायन से होती है–

"अरे कियना बतावँव बात रे अलबेला ढोला,

ढोला मारूगढ़ ननडुल के राजा माता देवन्तिन के लाल रे अलबेला ढोला।'

ढोला खिसियागे जंगल मां, करत-करत सिकार रे अलबेला ढोला।

रेवा-परेवा ए दूनो बहिनी ढोला राखे बिलमाय रे अलबेला ढोला।

सुन हो ढोला बात हमारे, बन जा जोड़ी हमार हो अलबेला ढोला।

ओतका के बात ला सुन के ढोला देख बरन नहि जाय रे अलबेला ढोला।

रेवा-परेवा के बात ल सुनके, ढोला के जी अगियाय रे अलबेला ढोला।

गुस्सा ल देखके रेवा-परेवा, जी ओखर खिसियाय रे अलबेला ढोला।

मंतर मारके राजा अउ घोड़ा ल, पथरा दिये बनाय रे अलबेला ढोला।"

बाँसगीत के अन्तर्गत गायी जाने वाली बहुत-सी लोकगाथाएँ हैं।

इसमें रावत गायक लोकगाथाओं का एक विशेष शैली में गायन करते हैं। प्रमुख लोक-गाथाओं में कुँवर अछरिया, फुलबासन, अहिमन रानी, राजभोज, गोपी ठेठवार, लोरिक चंदा, चंदा रहुताइन, कंठी राऊत, राजा जंगी ठेठवार, लछमन जति, किसन चरित्र का गान करते हैं। वर्तमान में रावत जाति बाँसगीत के अन्तर्गत गोवर्धन पूजा, रोहितदान, सरवन, अल्हा-ऊदल, भरथरी, बघवा अउ वामन, गनेस कथा, हनुमान कथा इत्यादि लोक-गाथाओं के गान करते हैं। अब समस्त लोकगाथाएँ मंच से जुड़ चुकी हैं। व्यवसायिक दृष्टि से इसका

मंचीकरण, आर्थिक दबाव, ख्याति आदि के कारण लोकगाथा गायन की शैली में नित नये प्रयोग करते देखे जाते हैं, किंतु अपवाद स्वरूप बाँसगीत गायन-शैली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

देवार जाति द्वारा गायी जाने वाली लोकगाथाएँ—देवार भ्रमणशील गायक जाति है, जो मूलतः छत्तीसगढ़ में निवास करती है। ये दो भागों में बँटे हुए हैं—रायपुरिया तथा रतनपुरिया देवार। रायपुरिया देवार सारंगी वाले और रतनपुरिया ढूँगरू वाले देवार के नाम से जाने जाते हैं। इस घुमन्तू जनजाति के जीवकोपार्जन के साधन में मदारी के साथ बंदर का खेल दिखाना तथा परंपरागत लोकगाथाओं का गायन भी सम्मिलित है। इनके पास लोकगाथाओं का विशाल भण्डार है, जिनमें से कुछ प्रमुख लोकगाथाएँ हैं—गोंडवानी, पंडवानी, चंदा राउताईन, दसमत ओडानिन, कोताराम नायक, नगेसर कैना, बोधारू, फुलबासन, रायसिंह पवारा, गोपालराम बिछिया इत्यादि।

छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य

लोक साहित्य में छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य का महत्वपूर्ण स्थान है। नाचा-गम्मत, रासलीला या रहस, डिढ़वानाच आदि छत्तीसगढ़ के प्रमुख लोकनाट्य हैं। जीवन के किसी भी मार्मिक प्रसंग, जिसमें परिवार के बनते-बिगड़ते रिश्ते, दहेज-प्रथा, अस्पृश्यता, अंध विश्वास, अनमेल विवाह और विधवा पुनर्वास के संबंध में संदेश-परक दृष्टि को सहज रूप में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी स्तर पर लोक-मानस जिस बात को स्वीकार नहीं कर पाता, उसका मखौल वह नाचा द्वारा करता है। गाँव के गौटिया के अत्याचार से लेकर अंग्रेजों के आतंक तक, विवाह से लेकर ऋतुओं के परिवर्तन तक न जाने लोकनाट्य के कितने वर्ण्य विषय होते हैं, जो गीतों और अभिनय के द्वारा अधिक प्रभावी और मनोरंजक हो जाते हैं।

छत्तीसगढ़ में लोकनाट्य की परंपरा बहुत पुरानी है। इसका एक सूत्रबद्ध स्वरूप हम भोंसला राज्य के आश्रित बाबू रेवाराम की रहस लीला के 'गुटका' में पाते हैं, उन्होंने इस गुटका में उत्तर प्रदेश की रासलीला से प्रेरणा लेकर कृष्णलीला की गुटका की रचना की। इसमें उन्होंने भक्त कवियों के पदों' के साथ अपने पदों को भी समाहित किया। इस गुटका में उन्होंने छत्तीसगढ़ी शब्दों के प्रयोग के साथ यहाँ के रीति-रिवाजों, आभूषणों, व्यंजकों तथा परिधानों को भी महत्व दिया। उनके इस प्रयास को राजाश्रय प्राप्त था। यही कारण है कि रहस को व्यापक प्रसिद्धि मिली। छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य की विशेषता उनके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है। छत्तीसगढ़ में मुख्यतः रहस लीला, नाचा और गम्मत लोकनाट्य की परंपरा है। यथा—

रहस—रहस लोकगीत और लोक नृत्य प्रधान लोकनाट्य है। इसकी प्रस्तुति रासबिहारी श्रीकृष्ण की लीला पर आधारित होती है। इसलिए संपूर्ण कार्यक्रम को 'ब्रज विलास' की संज्ञा देकर इसका मंचन करते हैं। रहस छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य की निधि है। इसमें अध्यात्मिकता के साथ लोक का भी दर्शन होता है। यहाँ रहस करने वालों में पं. दुखूराम दुखे, ननका पंडित और गोदिल साद अनुरागी जी ने वर्षों तक मण्डली का सफल संचालन किया। रहस की परंपरा को बनाये रखने में सतनामी समाज का स्मरणीय योगदान रहा है। इसकी प्रस्तुति में निर्धारित आठ कलाकारों में मुख्य कलाकार गायक होता है, जो गाते समय 'रागी' कहलाता है।

इस लोकनाट्य के सभी कलाकार वाद्य यंत्रों को कमर में बाँध कर स्वर में गाते चलते हैं। नृत्य पक्ष में एक जोकर, परी और एक सहायक नर्तक, वादक कलाकारों के साथ प्रस्तुति देते हैं।

कार्यक्रम को मनोरंजक बनाने के लिए बीच-बीच में झाँकी की प्रस्तुति होती है। रहस के कलाकार अनेक धार्मिक लोककथा तथा गाथाओं को गीतों के द्वारा दर्शकों के सामने मनोरंजक रूप में लाते हैं। नौ दिनों तक आयोजित इस धार्मिक व मनोरंजक महाआयोजन में चार घण्टे प्रतिदिन रहस की प्रस्तुति होती है। पहले नाचा में खड़े साज का चलन था। इस परंपरा को रहस के कलाकारों द्वारा आज भी निभाया जा रहा है, क्योंकि कार्यक्रम के दौरान बेड़ा के चारों तरफ घूम-घूमकर कृष्णलीला का बखान करते हैं। दर्शक भी वर्गाकार बैठे रहते हैं। इनकी सुविधा का भी ध्यान रखते हैं।

नाचा–नाचा छत्तीसगढ़ का प्रमुख लोकनाट्य है। यह जन मनोरंजन का प्रमुख साधन है। इसका स्वरूप एक सर्वजातीय लोक-रंग विधा का है, जिसका जन्म और विकास ग्रामीण समाज में हुआ है। इसे अनेक विधाओं ने पोषित करके समृद्ध किया है। नाट्य विधा की दृष्टि से देखा जाय तो ग्रामीण परिवेश में रचा-बसा नाचा का स्वरूप इतना समृद्ध है कि इसके सामने नागर नाट्य मंच फीके पड़ जाते हैं। नाचा के विशिष्ट गुणों से प्रभावित होकर विश्वाविख्यात रंगनिर्देशक हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में इसका सम्मिश्रण किया। नाचा के कलाकारों की सहभागिता और लोकगीत नृत्य की वजह से उनके छत्तीसगढ़ी लोकनाटक ही नहीं, अपितु हिंदी नाटक भी लोकप्रिय हुए।

लोकनाट्य नाचा में समय-समय पर बदलाव भी हुआ है। स्व. दाऊ दुलार सिंह मंदराजी, दाऊ रामचन्द्र देशमुख, पश्री गोविन्दराम निर्मलकर, हबीब तनवीर जैसे अनेक कलाकारों ने इस विधा को परवान चढ़ाया है। आज भी छत्तीसगढ़ का शहरी-ग्रामीण जन मानस स्वयं को नाचा के पात्रों में ढूंढता है तथा मानसिक तृप्ति का अनुभव करता है। आज भले ही सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, लैपटॉप, मोबाईल जैसे कई सशक्त माध्यम विकसित हो गये हैं, फिर भी नाचा की महत्ता बनी हुई है।

गम्मत–गम्मत नाचा का ही एक भाग है। इसमें दो पात्रों द्वारा संवाद होता है जिन्हें 'गम्मतिहा' कहा जाता है। गम्मत नाचा का मूल आधार है। गम्मत बिना कथावस्तु की मनोरंजकता लिए चल ही नहीं सकता। गम्मत के कारण ही नाचा में संपूर्ण लोक-जीवन प्रति फलित होता है। लोक-जीवन में घटित घटनाएँ, जीवन संदर्भ और सामाजिक लोगों के क्रिया-कलाप, मनोरंजन के आवरण में प्रस्तुत किये जाते हैं। ये ही कथा वस्तुएँ गम्मत का मूल आधार बनती है। नाचा के अन्दर होने वाला नाटक ही गम्मत है। इसकी कथावस्तु और संवाद सहज तथा स्वाभाविक होता है। दर्शक हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं।

नाचा गम्मत को पहले मशाल नाच या खड़े साज के नाम से जाना जाता था। खड़े साज में सात कलाकार होते थे–चिकरहा, तबला वादक, मंजीरहा, जोकड और नर्तक जो स्त्री रूप में सजे होते थे। दो मशाल दिखाने वाले होते थे। मशाल के प्रकाश में शाम सात बजे से लगभग दस बजे तक नाचा किया करते थे। इसलिए उसे मशाल नाच या खड़े साज कहते थे। इसी को स्व.दाहु मंदराजी ने गम्मत नाम से संबोधित किया। दाऊ दुलार सिंह मंदराजी ने छत्तीसगढ़ी नाचा गम्मत को परिष्कृत करके एक व्यवस्था दी है।

गम्मत कलाकार अपने गायन-वादन में ब्रानंद आदि के धार्मिक भजनों तथा सूफी संतों की गजल एवं कव्वालियों का भी प्रयोग करते हैं। शास्त्रीय रागों व तालों का आधार लेते हुए गम्मत में प्रेम, देशभक्ति तथा समसायिक नवीन युग चेतना से प्रभावित होकर पोंगवा पंडित, शराबी, बुढ़वा बिहाव, अँधरा बिहाव, आदि गम्मत के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों, शासकों के अत्याचार व जर्जर समाज को रेखांकित किया है। प्रहसनों के बीच-बीच में कथानकों को सरस बनाने के लिए गम्मत में गीतों का गुम्फन पूरे प्रहसन को फलागम तक रोचक बनाते हैं। इसमें अभिनेता का उद्‌देश्य मात्र गीत गाना नहीं, अपितु कथानक को रोचक ढंग से आगे बढ़ाना होता है। इसलिए वे पूरे गीत नहीं गाते, बल्कि प्रसंगानुकूल गीतों के मुखड़े या एक दो अंतरे का गान करते हैं।

डिड़वानाच ओड़िया नाट, रामलीला, कृष्णलीला, दहिकांदो, माओपाटा, लोरिक-चंदा, पंडवानी नकटा-नकटी नाट छत्तीसगढ़ के अन्य लोकनाट्य हैं। इनमें डिड़वा नाच महिला प्रधान लोकनाट्य विधा है। यह मूल रूप में गीतिनाट्य है। विवाह-संस्कार के अवसर पर वर पक्ष की महिलाएँ अपने मनोरंजन के लिए डिड़वा नाच करती हैं। इसमें पुरुषों का आना पूर्णतः वर्जित होता है। फूहड़ता की वजह से यह लोकनाट्य यदा-कदा ही प्रदर्शित होता है। इसके गीत फगेड़ी लोग अवश्य गाते हैं।

'ओडिया नाट' बस्तर अंचल में प्रचलित लोकप्रिय लोकनाट्य है। इसका मंचन नामकरण, विवाह-संस्कार, लक्ष्मी जगार, मंडई मेले आदि में किया जाता है। छत्तीसगढ़ में तुलसीदास जी रचित 'रामचरितमानस' लोकनाट्य 'रामलीला' का आधार ग्रंथ है। इसमें वर्णित प्रभु श्रीराम के जीवन चरित्रों का छत्तीसगढ़ी में अभिनय किया जाता है। "कृष्णलीला' में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से लेकर कंस वध तक की कथा अभिनय के विषय हैं। यहाँ के आदिवासियों के मध्य 'दहिकांदो एक लोकप्रिय लोकनाट्य है। कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर प्रदर्शित यह मूलतः नृत्य नाटिका है। 'माओपाटा' बस्तर के मुरिया तथा मडिया जनजाति का लोकनाट्य है। शिकार कथा पर आधारित यह लोकनाट्य संपूर्ण पारंपरिकता के साथ मंच पर प्रस्तुत होता है। बस्तर अंचल में छेरछेरा पर्व के अवसर पर 'नकटा-नकटी' किया जाता है।

वस्तुतः जन मनोरंजन के साथ समाजिक जागरुकता पैदा करने में छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य अहम भूमिका निभा रहा है। नाचा और गम्मत की प्रासंगिकता बनी हुई है। 'रहस' का प्रदर्शन कम हो रहा है। धार्मिकता की वजह से रामलीला व कृष्णलीला अब भी पर्व विशेष मंचित हो रहे है, किंतु छत्तीसगढ़ में गिनी-चुनी मंडलियाँ ही सक्रिय हैं। नये दौर में डिड्वा नाच अप्रासंगिक हो गया है। उन्हीं लोकगीत, लोकगाथा अथवा लोकनाट्यों की प्रासंगिकता बनी हुई है, जिनके धार्मिक या सामाजिक आधार हैं। शेष गीत, गाथा और नाट्य लुप्त होते जा रहे हैं। आज संचार क्रांति ने लोकविधा को खूब प्रभावित किया है। अपनी लोक परंपराओं के प्रति हमारा सम्मान उचित ही है। उसके प्रेरणादायी तत्वों की अनदेखी नहीं की जा सकती है। वे हमारे ज्ञान और स्मृतियों के मूलाधार हैं। परन्तु यह भी सत्य है कि परंपराएँ स्वयं को बदलती हैं। परंपराओं का काल और समाज के अनुसार परिमार्जन तथा शोधन होता रहता है। जहाँ तक लोक-कलाओं में प्रयोग का प्रश्न है तो उसे सकारात्मक होना चाहिए।"7

यह भी सत्य है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। हम समयानुरूप परिवर्तित नहीं होंगे तो पिछड़ने का खतरा है। लोकगीत, लोकगाथा व लोकनाट्य खेत, खलिहानों व गाँव-शहर के मंचों पर नहीं देख-सुन पा रहे हैं, किंतु स्टूडियों में तो गा रहे हैं, मंचों पर प्रदर्शित कर रहे हैं। और हम अत्याधुनिक श्रव्य-दृश्य माध्यमों से देख सुन रहे हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि छत्तीसगढ़ की प्रदर्शनकारी लोक-कलाओं का प्रस्तुतीकरण व बाह्य आवरण बदलते रहे, किंतु उनकी आत्मा बनी रहे। इसके लिए भी हमारे लोक-कलाविद, लोक-कलाकार व लोक-कला प्रेमी सजग रहे। लोक तो संपूर्ण समाज को ऐसे रंग में देखना चाहता है, जहाँ मंगल ही मंगल हो।

संदर्भ

1. पाण्डेय सुधाकर (सम्पा.), नागरी निबंध-गंगा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण 2000 पृ. 172

2. शुक्ल, डॉ. दयाशंकर, छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य का अध्ययन, वैभव प्रकाशन, रायपुर, छत्तीसगढ़ द्वितीय संस्करण 2011, पृ. 134-35

3. यादव, डॉ. बैरिस्टर सिंह, हिन्दी लोक साहित्य में हास्य व्यंग्य, राष्ट्रीय साहित्य सदन, लखनऊ प्रथम संस्करण 1978, पृ. 136

4. शुक्ल, डॉ. दयाशंकर, छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ. 234

5. उपाध्याय, कृष्णदेव, लोक-संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण 2014, पृ. 283

6. शुक्ल, डॉ. दयाशंकर छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ. 254

7. यादव, डॉ. कालीचरण (सम्पा.) मड़ई 2014, रावत नाच महोत्सव समिति, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, पृ. IX, X

8. लोकगीत, ददरिया, लेखक के निजी संग्रह से

9. रावत, नाच के दोहे, लेखक के निजी संग्रह से 10. छत्तीसगढ़ी लोकगीत, लेखक के निजी संग्रह से

राजन यादव,

हिन्दी विभाग, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,

खैरागढ छत्तीसगढ़